02 अध्यापन से मुक्ति

मीनाक्षी उमेश

भूमिका

मैं किसी चीज की विशेषज्ञ नहीं हूँ और ऐन शुरुआत में ही यह साफ कर दूँ कि मैं अभी भी सीख रही हूँ। स्कूल कैसा होना चाहिए, इस पर मेरे विचार एक स्कूल टीचर होने के नाते मेरी स्मृतियों पर टिके हैं। ईमानदार होकर कहूँ तो पूवीधाम शिक्षा केन्द्र शुरू करते वक्त मुझे पता न था कि बच्चों को पढ़ाया कैसे जाना चाहिए और बच्चों को कैसे वातावरण की जरूरत होती है, लेकिन मैं इतना तो जानती थी कि एक छात्रा के बतौर मैंने कक्षा में कोई काम की चीज नहीं सीखी। सो मोटे तौर पर मैं यह मानकर चली कि ऐसे वातावरण में सारे के सारे बच्चे कुछ नहीं सीख पाते।

मेरी इस धारणा के मद्देनजर जब मैंने पलटकर देखा तो पाया कि मेरी अधिकांश स्मृतियाँ स्कूल व अध्यापकों के प्रति गुस्से और असन्तोष की स्मृतियाँ थीं। बस उसी पल मैंने महसूस किया कि मैं कुछ अलग करना चाहती हूँ: मैं नहीं चाहती थी कि अपने स्कूली दिनों को याद करते वक्त कोई भी बच्चा मुझे ऐसी नकारात्मक भावनाओं से देखे।

तभी मैं एक प्रसिद्ध टीचर के सम्पर्क में आई जिन्होंने मुझे यह किस्सा सुनाया। *एक युवा भिक्षु ने उनसे पूछा, "गुरुजी, एक बात बताइए कि ये गुरु भला किसलिए होते हैं?" "तिस पर वे मुस्कराए और बोले," अरे! वे किसी काम के नहीं होते! वे तुम्हें वही पढ़ाते हैं जो तुम पहले से जानते हो और वही चीजें दिखाते हैं जो तुम देख चुके हो।"* और उनका यह जवाब मेरे साथ रहा आया।

फिर जब मैंने अपने बच्चों को देखा तो पाया कि बिन पढ़ाए ही वे किस तरह पढ़ जाते हैं, इस तरह मेरी शिक्षा आगे बढ़ी। मैंने देखा कि सीखने के लिए बच्चा अपने शरीर का इस्तेमाल करता है। शरीर सीखने का पहला माध्यम बनता है। शरीर मन को पढ़ाता है और मन चित्रों, अनुभवों और क्रियाओं का एक ऐसा संसार रचता है जिसमें शरीर शामिल रहता है। बाहरी दुनिया की तस्वीर मन के अन्दर बनाने के लिए शारीरिक अनुभव बड़े काम के होते हैं। भरोसा, आत्म–विश्वास, सहयोग, ईमानदारी, सच्चाई, संवेदनशीलता, स्वायत्तता और अन्य सकारात्मक (यहाँ तक कि नकारात्मक भी) प्रवृत्तियाँ, व्यक्तिगत अनुभवों से ही उपजती हैं। मैंने यह भी देखा कि कोई चीज सबसे तेज और सबसे अच्छे से तभी सीखी जाती है जब बच्चा तय कर चुकता है कि उसे वह चीज सीखना है। सीखने की इच्छा होने के बावजूद सीखना मस्तिष्क के लिए एक चुनौती तो होता ही है। शिक्षा की प्रकृति ऐसी होने के चलते शिक्षक की भूमिका मेरे लिए पहेली बन गई।

बच्चे का मन बहुत सक्रिय और जिज्ञासु होता है। मेरी बेटी कोई तीनेक साल की रही होगी जब मैं उस नन्ही बच्ची के अवलोकन से चकित रह गई। आसपास उड़ते हुए बगुलों को देखकर ही वह भाँप जाती थी कि गायें कहाँ चर रही हैं। वह जानती थी कि बगुलों को गायों की पीठ पर बैठने में मजा आता है। वह सारे तिनके और फूल चूसती थी और जान जाती थी कि उनमें से किस–किस में रस भरा है! वह बस उनकी किनार देखकर ही भिन्न–भिन्न घासपत्तियों में अन्तर करना सीख गई थी। मैं यदि उसे घास का कोई ऐसा तिनका देती जिसमें रस न होता तो वह कहती, "नहीं, ये वाला नहीं माँ!" मेरे बेटे को भी, जो उन दिनों दो बरस का था और अभी अपने सवाल भी बोलकर अभिव्यक्त नहीं कर सकता था, मैंने एक प्रयोग करते देखा। हमारे घर में कड़प्पा पत्थर के त्रिभुजाकार टुकड़े बड़ी संख्या में इधर–उधर पड़े रहते थे। तभी एक दिन मैंने उसे कड़प्पा पत्थर के ऐसे ही एक तिकोने टुकड़े को उसके आधार पर

खड़ा करते और उसे धचका मारकर नीचे गिराते देखा। उसका इस तरह पत्थर को छूकर गिराना, देखते ही बनता था। कई कोशिशों के बाद जाकर उसे यह बात समझ आई कि यदि थोड़े–से ही बल के द्वारा पत्थर को गिराना है तो पत्थर की नोक पर प्रहार करना होगा। इसके बाद जो हुआ वह तो और भी दिलचस्प था। पट्ठे ने कुछ पत्थर इकट्ठे किए और उन्हें लेकर वह थोड़ी दूर जाकर बैठ गया और इसके बाद वह वहीं से ही नोक को पत्थर मारकर अपने आधार पर खड़े उस पत्थर को गिराने की कोशिश करने लगा। इसके बाद तो अपने इस खेल में वह कोई एक घण्टे से भी ज्यादा समय तक रमा रहा! *और कुछ अध्ययन कहते हैं कि एक छोटे बच्चे की ध्यान–अवधि (अटेन्शन स्पान) केवल छह सेकण्ड होती है!*

धीरे–धीरे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची कि मुझे पढ़ाने की जरूरत तो नहीं पड़ेगी, अलबत्ता बहुत कुछ सीखने की जरूरत पड़ेगी। ऐसे में, मेरे बच्चों के लिए मेरा उपयोग, केवल मेरा वाचन कौशल ही रहा आया। कहानियाँ पढ़कर, गीत गाकर उन्हें सुनाना और विश्वकोश में उनके सवालों के जवाब ढूँढ़ निकालना, कुल मिलाकर, मैंने यही काम किए।

फलसफा

जब मैंने यह स्कूल शुरू करने का निर्णय लिया तब मैं हर बच्चे को गतिविधि करने, पूछने और सीखने के बराबर अवसर देना चाहती थी। लेकिन जो बच्चे पहले कभी स्कूल जा चुके थे और फिर स्कूल छोड़ चुके थे, वे सवाल पूछने से कतराते थे। तिस पर मैंने कुछ मॉण्टेसरी सामग्री बनाने का निर्णय लिया।

अपने हाथों से अपनी इच्छानुसार कक्षा के सुरक्षित वातावरण में काम करने का विचार बड़ा आकर्षक था। इसके समान्तर, सब्जियों की क्यारियाँ लगाने, कम्पोस्ट खाद बनाने, घासपात से ढकने (पलवार करने), वानस्पतिक स्प्रे करने और बीज चुनने जैसे काम बहुत मजेदार होने के साथ–साथ उपयोगी भी थे क्योंकि सबसे पहले तो हम सब किसान ही थे।

अब मेरे स्कूल को लेकर मेरा फलसफा स्पष्ट होने लगा था। शिक्षा का उद्देश्य हमारी जीवन शैली और जीवन को लेकर हमारे उद्देश्य से परिभाषित होता है। मनुष्य के जीवन का उद्देश्य भला क्या है? बहुत से दार्शनिकों ने इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न किया है। वे सभी विभिन्न विचारधाराओं के द्वारा अपने अपने निष्कर्षों पर पहुँचे हैं। लेकिन एक प्रकार से कहा जाए तो सच्चाई यह है कि उद्देश्य का जन्म मनुष्य के पहले हुआ। जीवन–श्रंखला का उद्देश्य, किसी जैवलोक (बायोस्फियर) में विभिन्न प्राणियों के परस्पर–सामंजस्य का उद्देश्य, जीवन के एक रूप द्वारा जीवन के अन्य रूप की आहारपूर्ति का उद्देश्य, सूर्य, पानी, पृथ्वी और वायु का उद्देश्य। इस सबसे निकलकर आने वाला मानव जीवन का एकमात्र उद्देश्य तो यही समझ में आता है कि वह अपने सीमित साधनों के द्वारा इन तमाम अन्य उद्देश्यों में अपना सहयोग दे।

'विकास' शब्द बड़ा ही विवादास्पद पद है। आमतौर पर जिसे हम विकास समझते हैं वह सड़क और बिजली की सुलभता के साथ–साथ इन दोनों के चलते उपलब्ध उत्पादों और सुविधाओं का प्रतीक होता है। लेकिन इस तरह का विकास प्राय: अपने साथ लालच नाम का रोग भी लिए आता है।

ऐसे में, जब हम इस विकास से अभी तक अनछुए रहे आए आदिवासी समुदायों को देखते हैं तो उनमें तृप्ति और आनन्द की ऐसी गुणवत्ता पाते हैं जो दुनिया के सर्वाधिक विकसित हिस्सों तक में दिखाई नहीं देती। शुरुआती समाजों में, जब तक मनुष्य की दृष्टि पर इस विकास की हड़बड़ी का कुहासा अभी छाया न था, हर किसी को अपने आसपास के पर्यावरण और उसमें निहित वानस्पतिक व जीव जगत के प्रति अपनी सामूहिक निर्भरता का एहसास था।

जैविक कृषि, सारी महान सभ्यताओं का आधार थी। जैविक खेती, मनुष्य द्वारा सबसे पहले सीखी गई कला, कारीगरी, तकनीक और आर्थिकी थी। उद्यम और ज्ञानार्जन की अन्य सारी विशेषज्ञताओं के उद्भव का आधार कृषि ही थी। इसके बावजूद, उन मशीनों और अन्तरिक्ष यानों के तुमुल में कृषि अब भुला दी गई है, जो कृषि के बिना किसी का

भला नहीं कर सकते। खेती इस धरती का सबसे महत्वपूर्ण उद्यम है, क्योंकि भोजन के बिना कोई भी जीव जिन्दा नहीं रह सकता। यह मामूली–सी सच्चाई नहीं बदली लेकिन समाज की प्रवृत्तियों में बड़ा भारी बदलाव आया है। खेती का काम अब उन लोगों के हवाले छोड़ दिया गया है जिन्हें और कोई काम करने योग्य नहीं समझा जाता। खेती को अब अच्छे कामों में नहीं गिना जाता। इसे अब सबसे घटिया काम माना जाने लगा है। इस भेदभाव में शिक्षा अपनी महती भूमिका निभाती है। उदाहरण के लिए, अधिकांश किसान, यह नहीं पढ़ पाते कि उनके खेत में डलने वाली चीजों में कौन–कौन से तत्व शामिल हैं। ज्यादातर लोग, कीटनाशकों के पैकेटों पर लिखी गई चेतावनियाँ नहीं पढ़ पाते। और न ही वे उन पर दिए गए आत्म–सुरक्षा के निर्देशों को पढ़ पाते हैं। आजकल किसानी ऐसे लोगों द्वारा की जा रही है जिन्हें मिट्टी, पानी और हवा के प्रदूषण का जरा भी बोध नहीं, और जो ग्लोबल वार्मिंग और मुक्त बाजार आर्थिकी का गोरखधन्धा कभी न समझ पाएँगे, और तो और, पेड़ लगाने का महत्व तक उनके पल्ले नहीं पड़ता।

हमारे विद्यालय में हम किसानी को एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कर्म की तरह बरतते हैं। डॉक्टर, इंजीनियर, शिक्षक बनने जैसे तमाम कॅरिअर विकल्पों में 'किसान बनने' को बड़े गर्व से शामिल किया गया है।

कीड़ों का अध्ययन

शुरुआत

मेरा जन्म और लालन–पालन मुम्बई में हुआ। मुम्बई में बिताए बीस बरसों ने शहरी जीवन के विभिन्न पहलुओं और उनके पीछे छिपी सच्चाइयों के प्रति मेरी आँखें खोलीं। सर जे.जे. कॉलेज ऑफ आर्किटेक्चर से वास्तुकला की डिग्री समाप्त करने के बाद, वैकल्पिक जीविका की मेरी चाह मुझे पॉण्डिचेरी के निकट ऑरोविल ले गई जहाँ मैंने कम–लागत, पारिस्थितिकी–स्नेही निर्माण तकनीकों पर काम किया। मेरा रुझान हमेशा से बच्चों और स्कूलों में रहा आया है और इसके चलते कई बार मैं 'इसै आम्बलम' स्कूल जाती रही जहाँ मेरी मुलाकात उमेश से हुई जो जैविक खेती कर रहे थे। आई.आई.टी चेन्नै से मैकेनिकल इंजीनियरिंग में बी.टेक करने के बाद उनका भी मोहभंग मेरी ही तरह हुआ था और वे भी एक वैकल्पिक जीवन शैली की तलाश में थे।

कुछ सालों तक कुछ संगठनों के साथ कम करने के बाद, हमने खेती, भवन निर्माण और शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न विकल्पों पर अपना कुछ करने का निर्णय लिया। सन 1992 में हमने तमिलनाडु के धर्मपुरी जिले में पूरी तरह से उजाड़ 12 एकड़ जमीन खरीदी। इस भूखण्ड में करीब दो एकड़ का एक ऐसा कृषि–योग्य टुकड़ा था जिसमें हम ऊसर फसलें ले सकते थे। बाकी की दस एकड़ जमीन में क्षरित पहाड़ी ढलान थे जहाँ हम पेड़ लगाकर जमीन को पुनर्जीवित करने की आशा ही कर सकते थे। पहले तीन साल तो अच्छी बारिश हुई जिसके चलते हम खेती और मिट्टी व जल संरक्षण का अच्छा–खासा काम कर सके। नतीजतन, पेड़ों और तिनकों की ढेरों देसी प्रजातियाँ पनप आईं। हमने जंगली पेड़ लगाए और पशु चारा भी बोया। पूरी तरह से अनुपजाऊ भूरे रंग का जमीन का वह टुकड़ा धीरे–धीरे खिलने लगा था और तभी बरसातें अविश्वसनीय छिटपुट छींटे बन चलीं। 1997 में तो वर्षा रानी सिरे से गायब रहीं। खेतों में लगीं हमारी सारी फसलें सूख–सुखा गईं। और तब जाकर हम किसान का दुख दर्द समझे।

उस साल हमने तय किया कि वर्षा–पोषित खेती पर पूरी तरह से ऐसे तो निर्भर नहीं रहा जा सकता और इसीलिए

हमने एक घाटी में पानी के विश्वसनीय स्रोत वाली एक जमीन खरीदी। लेकिन वहाँ पर पहले कभी हुए उर्वरकों और कीटनाशकों के भीषण इस्तेमाल के चलते, पहले दो सालों में तो सिंचित जमीन पर की गई जैविक खेती भी अच्छी पैदावार देने में असफल रही। तीसरे साल में जाकर वहाँ प्राकृतिक सन्तुलन स्थापित हो पाया। ऐसे में, जब हमें कुछेक लाभकारी कीड़े दिखे तो हमने वहाँ पर वानस्पतिक स्प्रे करना भी उचित न समझा। चौथा बरस आते–आते, हमारी जमीन सेहतमन्द बन चुकी थी और हमारी उपज भी काफी बेहतर हुई। बस उसी समय हमने स्थानीय लोगों को भी जैविक खेती के पाले में लाने का निर्णय लिया और इस काम में उनके बच्चों – **भविष्य के कृषकों** को शामिल किया।

इस प्रकार सन 2000 में हमने रबीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गाँधी और ई.एफ. शुमाखर के सिद्धान्तों पर आधारित एक स्कूल शुरू किया जहाँ मारिया मॉण्टेसरी, डेविड हॉर्सबर्ग, रुडोल्फ स्टाइनर और जैनेट व ग्लेन डुमैन द्वारा दिखाए गए तरीकों का इस्तेमाल होता है। वर्ष 2000 में हमारे पास 7 बच्चे होते थे, अब हमारे स्कूल में 90 बच्चे हैं। हमारा स्कूल, अभिभावकों की आजीविका और परिवार की आर्थिक स्थिति के हिसाब से फीस लेता है। प्रवासी श्रमिकों के बच्चों के लिए हम एक छात्रावास भी चलाते हैं। हमारे छात्रावास में 30 बच्चे हैं। ये बच्चे हमारे साथ ही रहते और शिक्षार्जन करते हैं। दिवाछात्र (डे–स्कॉलर्स), आसपास के किसानों के बच्चे होते हैं। हमारे सारे विद्यार्थी पहली पीढ़ी के विद्यार्थी हैं।

लेकिन एक समस्या भी थी। माँ–बाप चाहते थे कि उनके बच्चे अँग्रेजी सीखें सो उन्होंने हमसे आग्रह किया कि हम उनके बच्चों को इस तरह पढ़ाएँ कि उन्हें फटाफट नौकरी मिले और वे गाँव छोड़ें। उनके बच्चे जैविक या अन्य किसी किस्म की खेती करें, यह विचार उन्हें सिरे से नापसन्द था। अब असल दुविधा खड़ी हुई – इन बच्चों को क्या पढ़ना चाहिए? कौन तय करेगा?

वातावरण

किसी ने कहा भी है, *"केवल वही व्यक्ति शिक्षित है जिसने यह सीख लिया है कि सीखा कैसे जाता है; कि सामंजस्य बैठाते हुए बदला कैसे जाता है; जिसने जान लिया है कि वैसे तो कोई भी ज्ञान सुरक्षित नहीं है, पर केवल ज्ञानार्जन की प्रक्रिया ही सुरक्षा का सम्बल देती है। सो वर्तमान परिस्थितियों में शिक्षा के ध्येय के बतौर, ठहरे हुए, कर्महीन ज्ञान की बजाय जीवन्त प्रक्रिया पर भरोसा रखना ही सार्थक लगता है।"*

सो इन बुनियादी संवेदनाओं को ध्यान में रखते हुए हमने अपने स्कूल का वातावरण रचने और उसकी विषयवस्तु बनाने का काम शुरू किया। पूवीधाम शिक्षा केन्द्र में हम जो कुछ कर रहे हैं उस सबका लक्ष्य है एक ऐसे वातावरण का निर्माण जिसमें बच्चे की मौलिक संवेदनशीलता और सहजबुद्धि प्रखर बने और प्रोत्साहित हो, न कि हतोत्साहित होकर नष्ट हो जाए। प्रकृति के साथ काम करते हुए जीव–जन्तुओं, पेड़–पौधों, एक स्वतंत्र व सम्पूर्ण इकाई के रूप में प्रकृति, अन्य लोगों तथा अपने आन्तरिक व्यक्तित्व या स्व के प्रति संवेदनशीलता को जीवन्त बनाए रखा जाता है। हम बच्चे को समझने की कोशिश करते हैं। बच्चे पर हम पूरी तरह से भरोसा करते हैं। हमारे लाड़ और उनकी बालसुलभ सहजता पर हमारे विश्वास के फलस्वरूप बच्चे भी हमसे अच्छे से पेश आते हैं। इन्सान के बतौर हम

पूवीधाम में बच्चों की बागवानी

सबमें कुछ न कुछ कमी है, हमारी भी कमजोरियाँ हैं। लेकिन अपनी गलतियों से सीखने और अपनी आशंकाओं को दूसरों के सामने व्यक्त करने के लिए हम हमेशा तैयार रहते हैं।

हममें से हरेक अपनी–अपनी करनी के लिए जवाबदेह होता है और हर कोई, किसी भी कार्य पर सवाल खड़े कर सकता है। हमारे बीच सामुदायिकता की भावना कूट–कूटकर भरी है और अपने परिसर व शौचालयों की साफ–सफाई और उनका रख–रखाव हम आपस में मिल बाँटकर करते हैं। खाना बनाना, साफ–सफाई, हँसना–हँसाना, मस्ती; कुल मिलाकर हम बड़े मजे में रहते हैं।

संवेदनशीलता के चलते सृजन और वैज्ञानिक अनुसन्धान की गुंजाइश बनती है और यहीं से जीवन–दर्शन का द्वार खुलता है और आत्म–अन्वेषण की दिशा मिलती है।

सामान्य, औपचारिक स्कूलों में शिक्षा, खण्डित और जीवन से दूर हो चुकी है, वह कुछ ज्यादा ही अमूर्त बना दी गई है। यह बहुत बिरले ही होता है कि कोई बच्चा स्कूल में पढ़ाई जाने वाली चीजों और असल जीवन में होने वाली चीजों के बीच कुछ रिश्ता समझ या बना पाए।

हमारा उद्देश्य **जीवन और शिक्षा को एक–दूसरे से जोड़ना** और स्कूल के अन्दर या बाहर असल जीवन में हुए अनुभवों और अवलोकनों के द्वारा मिले संश्लेषित ज्ञान को समझने–बूझने में बच्चों की मदद करना है।

विषयवस्तु

उपरोक्त सारी जरूरतों को ध्यान में रखते हुए हमने अपने स्कूल की पढ़ाई को पाँच मूलभूत इकाइयों में बाँटा :

पाँच तत्व : अग्नि, पृथ्वी, जल, वायु और आकाश

जीवन बने रहने के लिए ये पाँच तत्व बड़े जरूरी हैं। अपनी पाँच इन्द्रियों के द्वारा बच्चे इन तत्वों को अनुभव करते हुए उनके भौतिक गुणों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। यहाँ पर एक वयस्क की भूमिका सिर्फ इतनी होती है कि वह बच्चों का ध्यान तत्व के उन लक्षणों की ओर ले जाए जिनका सम्बन्ध वे उन अवधारणाओं से जोड़ रहे होते हैं जो अवधारणाएँ कक्षा में पढ़ाई जा रही हैं। बच्चों को सिखाई जाने वाली अवधारणाओं पर अध्यापक कहानियाँ और गीत लिखते हैं। हमारी पाठ्यचर्या इसी बुनियाद पर विकसित हुई है लेकिन इसमें कहानी सुनाने और गीत गाने की परम्परा का भी समावेश किया गया है ताकि सम्प्रेषण आसान हो।

सूर्य की परछाई से समय पता करना

शिक्षा मण्डलों व शिक्षण संस्थाओं द्वारा महत्वपूर्ण माने गए बुनियादी सिद्धान्तों को हम कथाओं व गीतों में पिरोते हैं जो कक्षा में दोहराए और बाँचे जाते हैं। इन कहानियों और गीतों से जो कुछ उन्हें समझ आया, बच्चे उसका सिद्धान्त चित्र बनाकर दिखाते हैं। खुद बच्चों के बीच और शिक्षक के साथ भी उनकी बहुत बातचीत होती रहती है।

बच्चों को कक्षा में आने–जाने की पूरी स्वतंत्रता रहती है, दूसरों की एकाग्रता में व्यवधान डाले बिना वे जब चाहें, अपने हिसाब से कक्षा में आ–जा सकते हैं। सारा जोर, कागज के पुनरुपयोग, शिक्षण सामग्री के सही इस्तेमाल, पर्यावरण में मौजूद अन्य प्राणियों के प्रति सम्मान पर रहता है। गिनने, श्रेणीबद्ध करने, वर्गीकरण करने, मापने, मापन ड्रॉइंग, पैमाना ड्रॉइंग, ज्यामितीय ड्रॉइंग (जैसे कि पारम्परिक रंगोली) आदि के द्वारा गणित को कक्षा की गतिविधियों में शामिल किया गया है। ड्रॉइंग, बच्चों की अन्दरूनी दुनिया की एक महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति होती है। ड्रॉइंग में बच्चों को मजा आता है और हमें उनके द्वारा बनाए गए इन चित्रों से उनके सबसे निजी सपनों और उनकी वैयक्तिक उलझनों को जानने का अवसर मिलता है। पेड़–पौधों, फूलों व कीटों, प्राकृतिक स्थलों और इमारतों के चित्र बनाने पर काफी जोर व समय दिया जाता है। किसी भी वस्तु को ध्यान से देखते हुए उसका चित्र बनाते समय बच्चों को उस वस्तु विशेष के विभिन्न अवयवों की सविस्तार जानकारी मिलती है। अवलोकनों के दौरान, अन्य बच्चों की नजर में आईं लेकिन उनकी नजरों से छूट गईं चीजों पर बच्चों के बीच बड़ी बहस छिड़ जाती है और इसे लेकर बहुत सारे सवाल पैदा होने लगते हैं।

बहसबाजी, टहलकदमी, प्रेक्षण और सवाल–जवाब, रोजमर्रा की पढ़ाई के अभिन्न अंग होते हैं। बच्चों को उकसाया जाता है कि जिस चीज या विचार के बारे में जो कुछ वे जानते हैं, वे उसे अपने शब्दों में व्यक्त करें और इसके बाद उनके शिक्षक की मदद से उनके इस मौजूदा को विस्तार दिया जाता है।

बच्चों को समूहों में बाँटकर उनसे एक खाली भूभाग पर अपना वह पसन्दीदा हिस्सा चुनने के लिए कहा जाता है जिस पर वे पौधे उगाना चाहेंगे। इसके बाद जमीन के उस हिस्से की वे नपाई करते हैं और स्केल के हिसाब से उसे ड्रॉ करते हैं। क्यारियों की डिजाइन बनाकर वे तय करते हैं कि वे कौन–कौन से पौधे लगाना चाहेंगे। वे इस काम में लगने वाले बीजों की मात्रा की गणना करते हैं। इसके बाद वे अपने द्वारा लगाए गए पौधों की रक्षा के लिए उन्हें

पतवार से ढकते हैं, उन्हें पानी देकर सींचते हैं और फिर अपने पौधों को बढ़ता हुआ देखते हैं। वे पौधों के बढ़ने की दर की गणना करते हैं, उन पर आए फूलों की गिनती करते हैं और फलों की संख्या से उनकी तुलना करते हैं। वे पौधों के अंगों और उन पर मँडराने वाले कीटों और पक्षियों का अवलोकन कर उनके स्केच बनाते हैं। अन्ततः वे बागवानी पर खर्च हुए उनके समय और इसके फलस्वरूप उन्हें मिली सब्जियों की पैदावार की गणना करते हैं और फिर इसके आधार पर वे अपने इस सारे कामकाज का लागत–विश्लेषण करते हैं। इसके अलावा वे कीट नियंत्रण के प्राकृतिक अर्क व वर्मी–कम्पोस्ट खाद बनाना भी सीखते हैं। कुल मिलाकर वे उस क्षेत्र में पैदा होने वाले तमाम पौधों, जड़ी–बूटियों, पेड़ों और लताओं के बारे में काफी कुछ जान लेते हैं। इस प्रकार धीरे–धीरे वे उन्हें पहचानने लगते हैं तथा औषधियों या भोजन के लिए, कम्पोस्ट खाद बनाने या पलवार हेतु उनका उपयोग करने लगते हैं। इन अनुभवों के जरिए वे अपने आसपास से जुड़ते हैं और भौतिकी, रसायनशास्त्र, जैविकी, गणित, भाषा और ड्राइंग सम्बन्धी उनका सारा ज्ञान इन्हीं अनुभवों से उपजता है। यह ज्ञान स्थिर ज्ञान न होकर, हर पल बदलते और विकसित होते इस्तेमाल के लिए सदा तैयार रहता है।

अब चूँकि हमारा आग्रह ऐसे अद्‌भुत अनुभव रचने का होता है जिनके चलते बच्चों के मन में एक अद्‌भुत, आत्मीय, विश्वसनीय और ईमानदार दुनिया बन सके, इसलिए हम सुनिश्चित करते हैं कि बच्चों को आगंतुकों से मिलने और

उनके साथ संवाद करने के ज्यादा से ज्यादा मौके मिलें। यही नहीं, वे देश के अन्य भागों की यात्रा भी करते हैं और अलग–अलग सांस्कृतिक व जलवायु वाले इलाकों में 15–20 रोज गुजारते हैं। यात्रा के चलते वे नाना प्रकार की चीजें देख पाते हैं, नतीजतन, वे महक उठते हैं और उनकी इन खुशबुओं से हमारे जीवन सराबोर हो उठते हैं।

हमें विश्वास है कि ज्ञानार्जन की ऐसी प्रक्रिया बच्चे को समर्थ बनाएगी और वह महसूस करेगा कि स्कूल जाने से पहले अधिगम के जिन तरीकों ने उन्हें इतना सारा ज्ञान उपलब्ध कराया, वाकई सीखने के उपयुक्त तरीके हैं।

इस शैली के दो मुख्य उद्देश्य हैं – पहले तो, स्कूल में मिलने वाले अनुभवों को विद्यार्थियों के जीवन के हिसाब से सार्थक बनाना। दूसरे, यह विधि बच्चों के अपने ज्ञान को महत्व देती है जिसके चलते वे बिना किसी नकारात्मकता के ज्ञानार्जन की इसी ढब में आगे बढ़ते चलते हैं।

स्कूल के बाहर भी, घरेलू काम में मदद करते समय, अपने यार–दोस्तों के साथ अड्डेबाजी करते और खेलते समय, बच्चों को तरह–तरह के अनुभव होते हैं। इस तरह मिले उनके ज्ञान को आमतौर पर बेकार कहकर नकार दिया जाता है। लेकिन हमारे स्कूल में, बच्चों के इन अनुभवों पर भी चर्चा हो सकती है, उन्हें स्वीकारते हुए उनके बल पर सकारात्मक दृष्टि बनाई जा सकती है। बच्चे अपनी किन्हीं भी चिन्ताओं को कक्षा में उठा सकते हैं और उनकी इन चिन्ताओं, इन सरोकारों को उतनी ही संजीदगी से लिया जाता है जितनी संजीदगी से वे तमाम अवधारणाएँ बरती जाती हैं जिन्हें स्कूल में सीखना जरूरी समझा जाता है।

पर्यावरण को लेकर बच्चों के इस ज्ञान को सम्मानित करते हुए उसे उपयोग में लाकर और खेती को सामाजिक स्तर पर एक सकारात्मक विकल्प के बतौर प्रस्तुत कर हम अपने स्कूल के बच्चों को एक सन्तुलित दृष्टिकोण प्रदान करते हैं।

हम इस बात की आशा तो करते ही हैं कि उपरोक्त सब कामों पर हमारे बच्चों ने इतना ज्यादा अपना समय लगाया है कि वे अपने काम को सिर्फ पैसा कमाने का जरिया बनाने के बाजारू दबाव का प्रतिरोध कर पाएँगे। इतना ही नहीं, आज से शायद कुछेक सालों बाद वे खेती व हमारे स्कूल से मिले मूल्यों के आधार पर एक सादा, गरिमापूर्ण, आर्थिक हिसाब से सन्तुष्ट और सार्थक जीवन बिताने के रास्ते भी खोज निकालेंगे।

*मुम्बई में जन्मीं और पली–बढ़ीं **मीनाक्षी** सर जे.जे. स्कूल ऑफ आर्किटेक्चर से स्थापत्य कला की स्नातक हैं। वे पॉण्डिचेरी के निकट ऑरोविल में कम–लागत, पारिस्थितकी–स्नेही निर्माण–तकनीकों पर काम कर चुकी हैं। अपने साथी उमेश के साथ मिलकर उन्होंने कई सालों तक तमिलनाडु के सूखा–संवेदी जिले धर्मपुरी में खेती, भवन–निर्माण और शिक्षा के क्षेत्रों में वैकल्पिक विधियों पर काम किया है। सन 2000 में उन्होंने रबीद्रनाथ ठाकुर, महात्मा गाँधी और ई.एफ. शुमाखर के सिद्धान्तों पर आधारित एक स्कूल शुरू किया जहाँ मारिया मॉण्टेसरी, डेविड हॉर्सबर्ग, रुडोल्फ स्टाइनर और जैनेट व ग्लेन डुमैन द्वारा दिखाए गए तरीकों का इस्तेमाल होता है। अब वे दोनों पूवीधाम ग्रामीण विकास ट्रस्ट (पूवीधाम रूरल डेवलपमेण्ट ट्रस्ट) चलाते हैं जहाँ जैविक खेती की कारगर तकनीकों पर काम होता है और धर्मपुरी के नागरकूडल इलाके के बच्चों को एक मानवीय और बाल–केन्द्रित शैक्षिक वातावरण उपलब्ध कराया जाता है। अधिक जानकारी के लिए www.puvidham.org पर जाएँ। मीनाक्षी से puvidham@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवादः** मनोहर नोतानी*